इकाई 25 यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियां

इकाई की रूपरेखा

25.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- भारत में यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों के विकास और प्रसार को रेखांकित कर सकेंगे;
- यूरोपीय कारखानों और उनके आंतरिक संगठन की पद्धति के बारे में जान सकेंगे;
- यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों पर उनके राज्यों द्वारा नियंत्रण की प्रकृति को जान सकेंगे; और
- इन व्यापारिक कम्पनियों के प्रति भारतीय शासकों के रवैये और दृष्टिकोण का उल्लेख कर सकेंगे।

25.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम विवेच्य काल के अंत तक भारत में स्थित यूरोपीय बस्तियों, भारत में यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों के कारखानों के संगठन और उनके अपने पैतृक देश और मुगल शासकों एवं भारतीय राजाओं के साथ संबंधों पर विचार करेंगे। खंड 1 की इकाई 4 में हम भारत में पुर्तगालियों की व्यापारिक गतिविधियों की प्रकृति, अवस्थिति और संगठन पर विस्तार से विचार कर चुके हैं। यहां यूरोपीय कम्पनियों और भारतीय राजाओं के बीच हुए सशस्त्र संघर्षों का भी विवरण नहीं प्रस्तुत किया

गया है। (इसके लिए ऐच्छिक पाठ्यक्रम 05 देखिए)। यूरोपीय कम्पनियों के व्यापारिक हितों से जुड़े मुद्दों की चर्चा इस खंड की इकाई 23 में की जा चुकी है।

यूरोप में राष्ट्रीय राज्यों के उदय से यूरोप की "एकीकृत एकल अर्थव्यवस्था" टूट गई। इसके साथ-साथ यूरोप में कृषि और औद्योगिक क्रांति का आगमन हुआ। वाणिज्यवाद ने भी अपनी भूमिका निभाई। इन सब कारणों से नये बाजार की खोज की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। घरेलू बाजारों में माल की खपत की एक सीमा थी और खपत बढ़ाने के लिए विदेशी बाजार ही एकमात्र सहारा था। हालांकि आप इकाई 4 में पढ़ चुके हैं कि पूर्वी समुद्र पर वेनिस और जेनेवा के व्यापारियों का व्यापारिक एकाधिकार था। यूरोपीय व्यापारी उनके एकाधिकार को तोड़ने की जोरदार कोशिश कर रहे थे और पूर्व की ओर वैकल्पिक मार्ग ढूंढने का भी प्रयत्न किया जा रहा था। जहाज निर्माण और जलमार्गीय तकनीकों में अभूतपूर्व प्रगति के कारण यह संभव था। इस प्रयास के कारण अंततः आशा अन्तरीप के रास्ते पूर्व की ओर समुद्री रास्ता खोज निकाला गया। इससे समुद्र पर यूरोपीय देशों का एकाधिकार स्थापित हुआ—पहले पुर्तगाली हावी रहे और बाद में अन्य यूरोपीय शक्तियों (इंग्लिश, डच और फ्रांसीसी) ने अपना वर्चस्व कायम किया।

आप जानेंगे कि 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत इन यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों के युद्ध का अखाड़ा बन गया (अधिक जानकारी के लिए ऐच्छिक पाठ्यक्रम 05 पढ़िए)। पुर्तगालियों, डच, इंग्लिश और फ्रांसीसियों के अतिरिक्त कुछ अन्य यूरोपीय राष्ट्र भी पूर्वी व्यापार में रुचि लेते थे। परंतु उनकी व्यापारिक गतिविधियां सीमित थीं।

25.2 यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियां और भारत : 1600-1750

प्रस्तुत भाग में हम भारत में यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों के आगमन और उनके विकास पर विचार करेंगे। इस अंश में उनके हितों के टकराव और उनके तथा भारतीय शासकों के बीच सशस्त्र संघर्ष का भी विश्लेषण किया जाएगा।

25.2.1 डच ईस्ट इंडिया कम्पनी

1602 ई. में एक चार्टर द्वारा डच ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना की गई। आरंभ में डच व्यापारियों ने मसालों के व्यापार में रुचि दिखाई। इसलिए उन्होंने सुदूर पूर्व में अपना ध्यान ज्यादा केन्द्रित किया। उनके लिए भारत एक व्यापारिक डिपो मात्र था। उन्होंने 1606 ई. में अपना पहला कारखाना उत्तरी कोरोमंडल में पेटापूली में स्थापित किया, इसी वर्ष उन्होंने मसूलीपट्टम में दूसरा कारखाना लगाया। धीरे-धीरे उन्होंने महसूस किया कि मसाला द्वीप (इंडोनेशिया द्वीपसमूह) से मसाले के बदले कपड़े का विनिमय लाभदायक होगा। अतः उन्होंने भारत में क्षेत्रीय विस्तार की नीति अपनानी शुरू कर दी। उन्होंने पूलिकट (1610 ई.), कैम्बे (1620 ई.), सूरत और आगरा (1621 ई.), हरिहरपुर (1633 ई.), पटना (1638 ई.), ढाका (1650 ई.), उदयगंज (1651 ई.), चिनसूरा (1653 ई.), कासिम बाजार, बरानगर, बालासोर तथा नेगापट्टम (1659-60 ई.), में अपने कारखाने स्थापित किए।

गोलकुंडा के अंदरूनी इलाकों में भी उन्होंने अपने कारखाने स्थापित किये थे—एक नागलवानचा और दूसरा गोलकुंडा में। नागलवानचा में 1670 ई. में कारखाना स्थापित किया गया था परंतु राजनैतिक अस्थिरता के कारण 1680 ई.के दशक में इसे हटा लिया गया। गोलकुंडा में उन्होंने 1662 ई. में कारखाना लगाया। परंतु यहां भी राजनैतिक गड़बड़ी (मुगल-गोलकुंडा संघर्ष, 1684-87 ई.) के कारण उन्हें 1684 ई. में गोलकुंडा से भी अपना कारखाना हटाना पड़ा। 1675 ई. तक हुगली के महत्व में काफी वृद्धि हो चुकी

थी जिससे पिपली (उड़ीसा के समुद्रतट पर स्थित) डच कारखाने का महत्व घट गया और अंततः 1675 ई. में उन्होंने यह स्थान छोड़ दिया। इसी प्रकार स्थानीय राजा द्वारा सशस्त्र आक्रमण करने के कारण ढाका और उदयगंज स्थित डच कारखानों को भी हटाना पड़ा। डचों ने बंगाल प्रांत में दो कारखाने 1669 ई. में खानकुल और 1676 ई. में मालदा में स्थापित किए। परंतु जल्दी ही दोनों कारखानों को बंद करना पड़ा।

डचों की बढ़ती शक्ति को अंग्रेजों ने अपने हितों के लिए खतरनाक समझा। जब अंग्रेजों ने मसूलीपट्टम में अपना कारखाना लगाया और पेटापूली में अपनी व्यापारिक गतिविधियां आरंभ कीं तो डचों की यह भरसक कोशिश रही कि पूलीकट के व्यापार में अंग्रेजों को कोई हिस्सा न मिले। हितों का यह संघर्ष जारी रहा। हालांकि 1619 ई. में डच और अंग्रेजों के बीच एक समझौता हुआ कि दोनों मिलकर भारत में व्यापार करेंगे। अंग्रेजी कम्पनी को इस शर्त पर पूलीकट के व्यापार में हिस्सा लेने की अनुमति दी गयी कि वे डच किले और वहां की सेना का आधा खर्च वहन करेंगे। परंतु यह समझौता ज्यादा दिन तक कायम न रह सका। 1623 ई. और पुनः 1653-54 ई. में डचों ने अंग्रेजों के जहाजों पर हमला किया। 1672-74 ई. के बीच डचों ने एक बार फिर सूरत और बम्बई में स्थित अंग्रेजी प्रतिष्ठानों में बाधा पहुंचाने की कोशिश की और बंगाल की खाड़ी में अंग्रेजी जहाजों पर कब्जा कर लिया। अंग्रेजों ने पूर्वी द्वीपों पर डचों के वर्चस्व को महसूस किया। अतः उन्होंने उन्हें भारतीय भूमि से भगाने का निर्णय किया। अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिए अंग्रेजों ने भारत में पुर्तगालियों से हाथ मिलाये। अंततः वे उन्हें बेदारा (1759 ई.), के युद्ध में हराने में सफल हुए। इससे भारत में पुर्तगालियों की शक्ति को गहरा धक्का लगा। उसके बाद डचों ने भारत में अपने को "देशी व्यापार" तक ही सीमित रखा। 1773 ई. में उन्होंने नागौर और नेगापट्टम स्थित बचे-खुचे डच अड्डे को भी छोड़ दिया। 1795 ई. तक अंग्रेजों ने डचों को भारत से पूरी तरह निष्कासित कर दिया। यहां तक कि आशा अन्तरीप में भी उनके प्रभाव में कमी और अंग्रेजों के वर्चस्व में वृद्धि हुई।

25.2.2 इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी

1599 ई. में पूर्व के साथ व्यापार करने के लिए "साहसी व्यापारियों का इंग्लिश संगठन" बनाया गया। इस कम्पनी (ईस्ट इंडिया कम्पनी के नाम से प्रसिद्ध) को 31 दिसम्बर 1600 ई. को रानी एलिजाबेथ ने पूर्व में एकाधिकार व्यापार का राजकीय चार्टर प्रदान किया। 1608 ई. में अंग्रेज व्यापारियों ने सूरत में अपना "पहला" कारखाना लगाने का निर्णय लिया। 1619 ई. तक उन्होंने आगरा, अहमदाबाद और भडौंच में अपने कारखाने स्थापित कर लिए।

दक्षिण भारत में कोई शक्तिशाली राज्य नहीं था अतः वहां कारखाना स्थापित करने का माहौल ज्यादा अनुकूल था। अंग्रेजों ने दक्षिण में अपना पहला कारखाना 1611 ई. में मसूलीपट्टम में लगाया। दूसरा कारखाना 1626 ई. में आराम गांव में लगाया गया। 1639 ई. में उन्होंने स्थानीय राजा से मद्रास पट्टे पर ले लिया। जल्द ही उन्होंने इसकी किलेबंदी कर दी जिसे फोर्ट सेंट जॉर्ज के नाम से जाना गया। 1668 ई. में उन्होंने बम्बई द्वीप पर कब्जा जमा लिया और जल्द ही वहां भी किलेबंदी कर ली। शीघ्र ही (1687 ई. तक) सूरत के स्थान पर यह कम्पनी के पश्चिमी तट का मुख्यालय बन गया।

पूर्व में अंग्रेजों ने अपेक्षाकृत विलंब से प्रवेश किया। उड़ीसा में 1633 ई. में हरिहरपुर और बालासोर में पहला कारखाना लगाया गया। 1651 ई. में उन्हें हुगली में व्यापार करने की अनुमति मिली। जल्द ही उन्होंने पटना (बिहार) और कासिमबाजार (बंगाल) में भी अपने कारखाने खोल लिए। 1690 ई. में सुत्तनती में कारखाना खोला गया जिसे 1696 ई. में किलाबंद कर दिया गया। 1698 ई. में अंग्रेजों को सुत्तनती, कालिकत्ता और गोविंदपुर की **जमींदारी** मिल गयी जहां उन्होंने फोर्ट विलियम नामक किले का निर्माण किया। जल्द ही यह एक बड़े शहर के रूप में परिवर्तित हो गया और इसे कलकत्ता के नाम से जाना गया।

फोर्ट विलियम (1736)

25.2.3 फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनी

फ्रांसीसियों ने पूर्वी व्यापार में देर से प्रवेश किया। फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना 1664 ई. में हुई। पहला फ्रांसीसी कारखाना 1668 ई. में सूरत में स्थापित हुआ। यह स्थान अंग्रेजों के लिए काफी महत्वपूर्ण था। परंतु हुगली में मुगल-अंग्रेज सशस्त्र संघर्ष (देखिए भाग 25.5) के कारण भारत में अंग्रेजों की स्थिति और व्यापार को गंभीर धक्का लगा। इससे फ्रांसीसियों को भारत में जड़ जमाने का मौका मिल गया। 1669 ई. में फ्रांसीसियों ने मसूलीपट्टम में अपना दूसरा कारखाना लगाया। 1673 ई. में उन्होंने पांडिचेरी प्राप्त करने में सफलता पाई और 1674 ई. में बंगाल के नबाव ने उन्हें कलकत्ता के निकट एक स्थान आवंटित कर दिया जहां उन्होंने 1690-92 ई.में चंद्रनगर नामक शहर बसाया। शीघ्र ही फ्रांसीसियों को डच और अंग्रेजों के विरोध का सामना करना पड़ा। डच व्यापारियों ने गोलकुंडा के शासक के मन में फ्रांसीसियों के आक्रामक रवैये की बात भर दी। अतः डचों के साथ मिलकर गोलकुंडा के शासक ने सां थोम से फ्रांसीसियों को निष्कासित करने का निर्णय लिया (1674 ई.)। अंततः फ्रांसीसियों को सां थोम का किला छोड़ना पड़ा।

बाद में, 1690 ई. के दशक में, फ्रांस और हॉलैंड के बीच युद्ध छिड़ गया और भारत में भी ये आपस में लड़ पड़े। 1693 ई. में डचों ने उनसे पांडिचेरी छीन लिया। डचों ने हुगली में फ्रांसीसियों की व्यापारिक गतिविधियों पर भी रोक लगाने में सफलता प्राप्त की। 1720 ई. तक बेन्टम, सूरत और मसूलीपट्टम से फ्रांसीसी नियंत्रण हट गया: "यहां तक कि वे अपना लाइसेंस दूसरों को बेचने लगे।" परंतु 1721 ई. में उन्हें पुनर्जीवन मिला। माहे (मालाबार तट पर) में जल्द ही एक नई कम्पनी बनाई गई। 1739 ई. में कारिकल में भी उन्होंने अपना कारखाना खोला।

अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के बीच कट्टर दुश्मनी थी। 1742 ई. में यूरोप में ब्रिटेन और फ्रांस के बीच युद्ध हुआ। भारत में उनके बीच यहीं से संघर्ष शुरू हुआ। फलस्वरूप तीन कर्नाटक युद्ध हुए (1746-48 ई., 1749-54, ई., 1758-63 ई.)। वैंडिवाश मे निर्णायक युद्ध हुआ (जनवरी 1760 ई.)। फ्रांसीसी हार गये और भारत में लगभग उनके सभी अड्डे समाप्त हो गये। (विस्तार के लिए ऐच्छिक पाठ्यक्रम-05 देखिए)।

अब अन्य यूरोपीय कम्पनियों पर अंग्रेजी वर्चस्व पूर्णरूपेण कायम हो गया। पूर्तगालियों को गोवा, दमन और दीव से ही संतोष करना पड़ा और फ्रांसीसी पांडिचेरी, कारिकल और माहे में सिमट कर रह गये। अब अंग्रेजी विस्तार के लिए रास्ता बिल्कुल साफ था। (विस्तार के लिए ऐच्छिक पाठ्यक्रम-05 देखिए)।

25.2.4 अन्य यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियां

डेनमार्कवासी 1616 ई. में व्यापारी के रूप में भारत आए परंतु साम्राज्य स्थापित करने की उनकी कोई महत्वाकांक्षा नहीं थी। उन्होंने 1620 ई. में तंजोर के **नायक** से ट्रेंकूबार समुद्र तट प्राप्त किया और वहां एक किला बनाया। परंतु उनके पास संसाधनों की कमी थी। उन्होंने मसूलीपट्टम, पोर्टो नोवो और श्रीरामपुर में अपने कारखाने लगाए (1755 ई.) परंतु उन्हें सीमित सफलता ही मिली और अंततः वे अंग्रेजों को अपने कारखाने बेचकर 1845 ई. में भारत छोड़कर चले गए।

1722 ई. में फ्लैन्डर्स के व्यापारियों ने ओस्टेंड कम्पनी की स्थापना की परंतु उनकी गतिविधियां भारत में सीमित थी। स्वीडिश ईस्ट इंडिया कम्पनी 1731 ई. में स्थापित की गई परंतु भारत के बजाय उनकी गतिविधियां चीन में केन्द्रित थी।

बोध प्रश्न 1
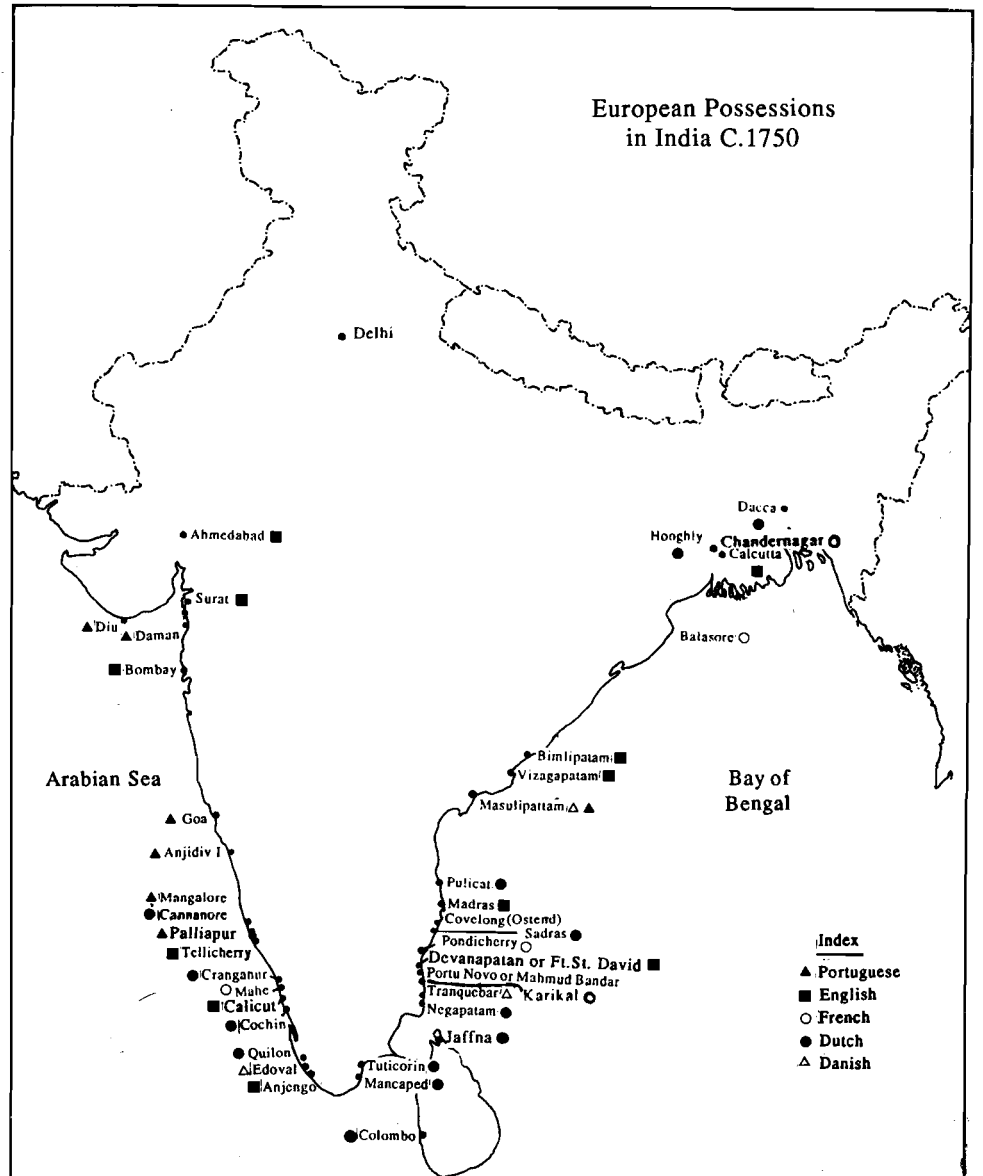
1) भारतीय समुद्र पर नियंत्रण के लिए डच-इंग्लिश संघर्ष का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए।

....

....

....

....

....

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

i) डच ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना .... (वर्ष) में हुई थी।

ii) "साहसी व्यापारियों के इंग्लिश संगठन" की स्थापना .... (वर्ष) में हुई थी।

iii) भारत में पहला अंग्रेजी कारखाना .... (वर्ष) में .... (स्थान) में लगाया गया।

iv) अंग्रेजों ने .... (वर्ष) में बम्बई द्वीप पर अधिकार प्राप्त किया।

v) चंद्रनगर स्थित फ्रांसीसी बस्ती .... (वर्ष) में स्थापित हुई।

vi) वैंडीवाश का युद्ध .... (वर्ष) में .... और .... के बीच लड़ा गया।

25.3 कारखाने और उनका संगठन

खंड 1 की इकाई 4 में आप पढ़ चुके हैं कि यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों ने पूर्व में अपने कारखाने किस प्रकार स्थापित किए थे। इन कारखानों में उत्पादन नहीं होता था। ये भंडार घर हुआ करते थे। अक्सर इनकी किलेबंदी की जाती थी। प्रस्तुत अंश में हम भारत में उनके कारखानों के आंतरिक संगठन पर विचार करेंगे।

25.3.1 डच

डच ईस्ट इंडिया कम्पनी का मुख्य प्रशासनिक केन्द्र बटाविया में स्थित था। गवर्नर जनरल और एक परिषद् इस प्रतिष्ठान के प्रधान होते थे। यह परिषद् एशिया के सभी डच कारखानों पर नियंत्रण रखती थी। परिषद् केंद्रीय निदेशक मंडल के प्रति उत्तरदायी होती थी, जिसे "भद्रजन XVII" के नाम से जाना जाता था जो लगातार छह वर्ष तक चैम्बर ऑफ एम्सटर्डम में अपनी बैठकें करते रहे और अगले दो वर्षों तक इनकी बैठक चैम्बर ऑफ जीलैंड में हुई।

प्रत्येक कारखाने में एक कारखानेदार को नियुक्त किया जाता था। ये कारखानेदार लगातार अपने प्रांत की व्यापारिक गतिविधियों, जहाजें की संख्या, निर्यातित-आयातित वस्तुओं, आदि की सूचना बटाविया भेजते थे।

कोरोमंडल में स्थित डच कारखाने एक निदेशालय, जिसका अध्यक्ष एक निदेशक होता था, द्वारा शासित थे। इस निदेशक को 1615 ई. में गवर्नर के नाम से जाना जाता था। 1655 ई. से पहले बंगाल में डच कारखाने कोरोमंडल के कारखानेदार द्वारा नियंत्रित तथा शासित किए जाते थे। 1655 ई. में हुगली में एक अलग निदेशालय, जो कि पुलीकट शासन के अधीन नहीं था, की स्थापना हुई। 1690 के दशक में कोरोमंडल में डच शासन का केंद्र पुलिकट से नेगापट्टम हो गया।

भारत में प्रत्येक फैक्ट्री (कारखाना) एक परिषद् द्वारा शासित थी। इस परिषद में एक निदेशक, सीनियर कारखानेदार या अधिकारी, लेखाधिकारी, न्याय अधिकारी, भंडार-गृह अधिकारी, जहाजों में माल लदवाने और उतरवाने वाले अधिकारी तथा छः कनिष्ठ (जूनियर) फैक्ट्री अधिकारी होते थे जिनमें से एक परिषद् के सचिव के रूप में कार्य करता था। इनके वेतन बहुत अच्छे नहीं होते थे।

25.3.2 इंग्लिश

इंग्लिश कम्पनी के आंतरिक प्रबंधन का प्रशासनिक उत्तरदायित्व "कोर्ट ऑफ कमीटीज" पर था जिसे बाद में 1709 ई. में "कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स" का नाम दे दिया गया। इसमें एक गवर्नर, एक उप-गवर्नर और व्यापारियों, जो इस कंपनी के भागीदार थे, की आम सभा द्वारा प्रतिवर्ष चुने गए 24 सदस्य होते थे। इसके अतिरिक्त एक सचिव और एक कोषपाल होता था। इसके सदस्य निदेशक (डायरेक्टर) के रूप में जाने जाते थे। कम्पनी की वर्चस्व निकाय "कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स" का मुख्यालय लंदन में था जबकि मातहत निकाय एशिया में स्थित थी। "कोर्ट ऑफ प्रॉपर्टीज" में सम्पन्न होने वाली बैठक में कम्पनी के हिस्सेदार प्रत्येक वर्ष निदेशकों का चुनाव करते थे। बड़े से बड़े और छोटे से छोटे हिस्सेदार केवल एक ही वोट दे सकते थे। कम्पनी की सदस्यता केवल हिस्सेदारों तक ही सीमित नहीं थी बल्कि यह आनुवांशिक सेवा तथा शुल्क द्वारा, प्रशिक्षता, आदि के माध्यम से भी प्राप्त की जा सकती थी। कम्पनी के पास आदेश जारी करने और क्षेत्र विशेष के कानूनों और रीति-रिवाजों के अनुसार कानून और आदेश देने के असीम अधिकार थे। कम्पनी के पास अपने कर्मचारियों के अपराध करने पर उन्हें जेल भेजने या आर्थिक रूप से दंडित करने का भी न्यायिक अधिकार था।

भारत में प्रत्येक कारखाने का प्रशासन एक **"गवर्नर-इन-कौंसिल"** के हाथ में था। गवर्नर इस परिषद् का अध्यक्ष होता था, परंतु उसके पास अतिरिक्त विशेषाधिकार नहीं होते थे। परिषद में सब निर्णय बहुमत से लिए जाते थे। इस परिषद् में कम्पनी के वरिष्ठ व्यापारी शामिल होते थे।

हालांकि कम्पनी की नीतियों के निर्धारण में कम्पनी की सत्ता सर्वोच्च होती थी परंतु एशिया में इसका अधिकार क्षेत्र सीमित था। आमतौर पर रोजमर्रा के मामले सीधे उपसमितियों को सौंप दिए जाते थे, अधिक महत्वपूर्ण मामले "कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स" के पास भेजे जाते थे। एशिया स्थित कौंसिल के अध्यक्ष और सदस्य सीधे "कोर्ट" या लंदन स्थित कम्पनी के सचिव से संवाद स्थापित कर सकते थे। परंतु प्रेसिडेंसियों के प्रभाव-क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले कारखानों को यह स्वतंत्रता और विशेषाधिकार प्राप्त नहीं था। अपना नियंत्रण मजबूत रखने के लिए लंदन स्थित "कोर्ट" विभिन्न मामलों पर वरिष्ठ पदाधिकारियों से भी अलग से जानकारी प्राप्त किया करता था। इस प्रकार सूचना दो जगहों से प्राप्त की जाती थी और अनियमितता से बचा जा सकता था।

कम्पनी की नीतियों का रख-रखाव और उन्हें लागू करने की जिम्मेदारी साधारणतया भारत स्थित कम्पनी के अध्यक्ष और परिषद पर थी। पूर्वी तट पर स्थित कारखानों के प्रशासन का नियंत्रण सेंट जॉर्ज किले (मद्रास) से किया जाता था। कंपनी का अध्यक्ष और परिषद् वहीं स्थित थे। यह परिषद् प्रशासनिक मामलों में सुझाव दिया करती थी।

1700 ई. में बंगाल के इंग्लिश कारखाने का मुख्यालय कलकत्ता बना दिया गया। ये कारखाने अलग से एक अध्यक्ष और परिषद् के नियंत्रण में थे।

25.3.3 फ्रांसीसी

भारत में फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनी का मुख्यालय पहले सूरत में स्थित था बाद में उनका मुख्यालय पांडिचेरी हो गया। "सुपीरियर कौंसिल ऑफ द इंडीज" उनका सर्वोच्च निकाय था। गवर्नर जनरल इसका अध्यक्ष था। वह भारत में फ्रांसीसी कार्यकलापों का समग्र रूप से प्रभारी होता था। सर्वोच्च परिषद् में पांच सदस्य थे। जिसकी अध्यक्षता गवर्नर करता था।

पूरा प्रशासन उसके हाथ में था। हालांकि कानून का क्रियान्वयन फ्रांसीसी राजा के नाम से होता था परंतु फ्रांसीसी राजा का हवाला दिए बिना गवर्नरों और पार्षदों को हटाया जा सकता था। सभी औपनिवेशिक पदाधिकारी परिषद् के मातहत होते थे।

भारत में फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनी की प्रमुख विशेषता उसके अधिकारियों का आपस में ईर्ष्या-द्वेष था। फ्रांसीसी आपस में लड़ते रहते थे। इससे भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी के विकास और प्रसार पर असर पड़ा। 1670 ई. के दशक में कैरों अपने साथी फ्रांसीसी मरकारा की उल्लेखनीय सफलता से जल उठा। हालांकि अंततः मरकारा ने फ्रांसीसी सरकार को आश्वस्त कर दिया कि यह आरोप आधारहीन है परंतु भारत में फ्रांसीसी कारखानों की स्थापना के प्रारंभिक चरण से ही आपसी वैमनस्य का बीज बोया जा चुका था जो अंततः घातक सिद्ध हुआ। इसी प्रकार 1726 में डुप्ले को उसके पद से निलंबित कर दिया गया। 1730 ई. में कहीं जाकर उसका यह निलंबन वापस हुआ और उसे चंद्रनगर का अधीक्षक (निदेशक) बनाया गया।

बोध प्रश्न 2

1) "भद्रजन XVII" क्या था?

....

....

....

....

....

2) "कोर्ट ऑफ कमीटीज" की कार्य पद्धति का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

25.4 यूरोपीय कंपनियों का अपने पैतृक देश से सम्पर्क और उनका नियंत्रण

इस भाग में हम यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों के अपने देश के साथ संबंधों, आदि पर विचार-विमर्श करेंगे।

25.4.1 डच

डच सरकार (स्टेट्स जनरल) के एक चार्टर द्वारा डच ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना की गयी थी। सत्रह निदेशक इस कम्पनी का प्रशासन संभालते थे इन्हें "भद्रजन XVII" के नाम से जाना जाता था। डच ईस्ट इंडिया कम्पनी की एक खास विशेषता यह थी कि इसके हिस्सेदारों का प्रबंधन निकाय पर कोई नियंत्रण नहीं होता था। हालांकि डच सरकार के पास सर्वोच्च सत्ता थी परंतु "भद्रजन XVII" के पास वास्तविक शक्ति थी और वे राज्य के भीतर राज्य के रूप में स्वतंत्र रूप से कार्य करते थे। 1644 ई. में "भद्रजन XVII" ने डच सरकार (स्टेट्स जनरल) से कहा कि "पूर्व में जीते गए स्थानों और अड्डों को राष्ट्रीय अभियान नहीं माना जाना चाहिए और इन्हें निजी सम्पत्ति के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए।"

डचों के पूर्वी व्यापार में बटाविया स्थित गवर्नर जनरल परिषद् के पास लगभग पूर्ण प्रभुसत्ता थी। बटाविया स्थित परिषद् एक निपुण प्रशासनिक निकाय थी। पूर्व के सभी कारखानेदारों को वहां नियमित सूचना भेजनी पड़ती थी। वरिष्ठ पदाधिकारी नियमित जांच भी किया करते थे। लंबी दूरी और संचार के तीव्र माध्यमों के अभाव में परिषद् की गतिविधियों पर "भद्रजन XVII" द्वारा नियंत्रण स्थापित कर पाना कठिन था। "भद्रजन XVII" ने बटाविया गवर्नर जनरल परिषद् को आशा अन्तरीप के पूर्व में स्थित क्षेत्रों के शासकों के साथ समझौता करने, किला बनाने और गवर्नरों को नियुक्त करने आदि का अधिकार सौंप दिया। परंतु ये सभी संधियां डच सरकार के नाम से सम्पन्न होती थीं। हालैंड में डच ईस्ट इंडिया कम्पनी कभी भी अस्त्र-शस्त्र के बल पर व्यापार बढ़ाने के पक्ष में नहीं रहती थी। वे गवर्नर जनरल और परिषद् को निर्देश देते थे कि जहां तक संभव हो सके सशस्त्र संघर्ष टाला जाए। परंतु इनके कारखानेदार जानते थे कि भारत में बिना युद्ध किए और सैन्य बल दिखाए व्यापार करना असंभव था। हालैंड में स्थित कम्पनी के निदेशकों के पास बटाविया परिषद् के माध्यम से सूचनाएं पहुंचती थी और परिषद् भारत और विभिन्न पूर्वी देशों में नियुक्त कारखानेदारों से सूचनाएं प्राप्त करती थी। कभी-कभी बटाविया स्थित गवर्नर जनरल और भारत स्थित कारखानेदार कुछ आदेशों को अपनी ओर से घुमाकर पेश करने का प्रयत्न करते थे। 1616 ई. में जब गृह स्थित डच निदेशकों ने आदेश जारी किया कि "अम्बोयना और बांदा द्वीपों को अधीन करना सर्वाधिक महत्वपूर्ण था और सभी विदेशी राष्ट्रों को इस व्यापार से अलग कर देना चाहिए, बटाविया के गवर्नर जनरल ने आंग्ल-डच संघर्ष की आशंका से अंग्रेजों के विरुद्ध शक्ति का उपयोग न करने का फैसला किया। दूसरी तरफ महानिदेशक कोन ने इसे अंग्रेजों को लवंग द्वीपों (Spice Islands) से निष्कासित करने के लिए शक्ति प्रयोग करने संबंधी आदेश के रूप में ग्रहण किया। परिणामस्वरूप बटाविया परिषद् ने कोन की कार्यवाई को मंजूरी न देने का फैसला किया। परंतु अगस्त 1616 ई. तक कोन ने "भद्रजन XVII" से मंजूरी ले ली। इसकी प्रतिक्रिया में गवर्नर जनरल (रेन्सट रियल) ने त्यागपत्र दे दिया और कोन ने नियंत्रण संभाल लिया।

कारखाने में अक्सर मनमुटाव और दुश्मनी चलती रहती थी। जब कोन ने रेवेस्टीन को पश्चिमी भारत का प्रशासनिक प्रमुख बनाया तब गोयरी ने उसकी सत्ता स्वीकार करने से सीधे इंकार कर दिया। अंततः कोन ने 1620 ई. में पीटर फान देन ब्रुक को ईरान और पश्चिमी भारत के डच कारखानों की गतिविधियों के निरीक्षण का उत्तरदायित्व संभालने के लिए सूरत भेजा। तब जाकर संकट हल हुआ। पीटर फान देन ब्रुक ने बटाविया के उस निर्देश को मानने से इंकार कर दिया जिमसें स्वदेशी (भारतीय) व्यापारियों के जहाजों पर कब्जा कर लेने का आदेश था। यान फान हैसेल ने वस्तुओं की खरीद के लिए स्थानीय ऋणदाताओं से राशि प्राप्त करने से मना कर दिया जबकि बटाविया और "भद्रजन XVII" का निर्देश था कि इन खरीदों के लिए केवल कम्पनी की पूंजी का ही उपयोग किया जाए। अतः अपनी प्रशासनिक गतिविधियों को संभालने के कम्पनी के सारे प्रयास असफल रहे और सुचारू संचार के अभाव में असल नियंत्रण कारखानेदारों और कारखानों के पास रहा।

25.4.2 इंग्लिश

सत्रहवीं शताब्दी के आरंभ में इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी इंग्लैंड की एकमात्र सबसे बड़ी कम्पनी थी। पूर्व के व्यापार पर इसका पूर्ण नियंत्रण था और अन्य अंग्रेज व्यापारियों को व्यापार करने से ये सख्ती से रोकते थे। अतः आरंभ से ही उन्होंने पूर्वी समुद्रों से प्रतिद्वंद्वी व्यापारियों की दूर रखने का प्रयत्न किया और विशेषाधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न किया। इससे स्वभावतः उन अंग्रेज व्यापारियों में अंसतोष उत्पन्न हुआ जो पूर्वी व्यापार के असीम मुनाफे में हिस्सा चाहते थे। इन व्यापारियों ने राजनैतिक नेताओं को प्रभावित करने का प्रयत्न किया परन्तु कम्पनी ने किसी प्रकार (रिश्वत, आदि देकर) चार्ल्स द्वितीय के शासन काल तक यह विशेषाधिकार कायम रखा। सभी प्रकार के विरोधों के बावजूद "इन्टरलोपर्स" के नाम से जाने वाले ये व्यापारी निजी आधार पर पूर्वी भारतीय व्यापार में संलग्न होकर कम्पनी के एकाधिकार का उल्लंघन करते रहे। 1688 ई. तक वे ब्रिटिश

संसद में काफी शक्तिशाली हो गए और परिस्थिति उनके अनुकूल हो गई। ये "मुक्त व्यापारी" सार्वजनिक तौर पर और संसद में अपनी मांगों के लिए दबाव डालने लगे। 1694 ई. में संसद ने एक प्रस्ताव पारित कर दिया कि इंग्लैंड के सभी नागरिकों को पूर्व में व्यापार करने का समान अधिकार है। इसके परिणामस्वरूप एक "नयी कम्पनी" का निर्माण हुआ। परन्तु "पुरानी कम्पनी" अपना विशेषाधिकार छोड़ने को तैयार न थी। काफी संघर्ष के बाद अंततः दोनों कम्पनियों ने मिलकर काम करने का फैसला किया और 1708 ई. में "द लिमिटेड कम्पनी ऑफ मर्चेन्ट ऑफ इंग्लैंड ट्रेडिंग टू द ईस्ट इंडीज" की स्थापना हुई।

इंगलैंड में कम्पनी और सम्राट में घनिष्ठ संबंध था। रानी एलिजाबेथ स्वयं कम्पनी की भागीदार थीं। रानी एलिजाबेथ की मृत्यु (1603 ई.) के बाद जेम्स प्रथम ने चार्टर (1609 ई.) को पुनः मंजूरी दे दी हालांकि तीन साल की सूचना देकर इसे कभी भी निरस्त किया जा सकता था। 1615 ई. में लंबी यात्राओं पर अनुशासन कायम करने के लिए कम्पनी को कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हुआ। 1623 ई. के चार्टर द्वारा कम्पनी को अपने सेवकों को नियंत्रित करने और दंड देने का और भी व्यापक अधिकार प्राप्त हो गया।

चार्ल्स प्रथम के शासनकाल में कम्पनी को काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ा। 1635 ई. में चार्ल्स प्रथम ने सर विलियम कोर्टेन को पूर्वी देशों के साथ व्यापार करने के लिए एक नये व्यापारिक निकाय "असाडा कम्पनी" स्थापित करने की अनुमति दे दी। परन्तु यह कम्पनी ईस्ट इंडिया कम्पनी के सामने टिक न सकी।

ऑलिवर क्रॉमवेल के शासनकाल में स्थिति एक बार फिर बदली। उसने कम्पनी के हितों का समर्थन किया। 1657 ई. में उसने एक नया चार्टर जारी किया जिसके द्वारा कोर्टेन "एसोसिएशन" को "पुरानी कम्पनी" में मिला लिया गया। यह चार्टर इसलिए महत्वपूर्ण था क्योंकि इससे कम्पनी के स्वरूप में परिवर्तन आ गया। पहले कम्पनी के हिस्सेदार जहाज के प्रति फेरे के हिसाब से अपना योगदान देते थे। अब इसके द्वारा कम्पनी एक संयुक्त स्टॉक कम्पनी के रूप में परिवर्तित हो गई जिसमें लगातार धन की आपूर्ति संभव हो सकी। अब कोई भी व्यक्ति 5 पौंड का प्रवेश शुल्क देकर और कम्पनी के स्टॉक में 100 पौंड का योगदान देकर कम्पनी का सदस्य बन सकता था। 500 पौंड देकर मतदान का अधिकार प्राप्त किया जा सकता था, इसी प्रकार 1000 पौंड का अंशदान देकर वह समिति का सदस्य चुना जा सकता था। गवर्नर और उप-गवर्नर के पद की अवधि कम करके दो वर्ष कर दी गई।

चार्ल्स द्वितीय ने 1661 ई. में कम्पनी को दूसरा चार्टर प्रदान किया। इस चार्टर द्वारा कम्पनी को अपने प्रशासन के लिए गवर्नर और अधीनस्थ अधिकारियों की नियुक्ति करने का अधिकार मिल गया। उनका दंड देने का न्यायिक अधिकार भी व्यापक हो गया। कम्पनी को यह अधिकार मिला कि वह गवर्नर और प्रत्येक कारखाने की परिषद् को अंग्रेजी कानून के अनुसार अपने अधीनस्थ अधिकारियों का निरीक्षण करने का अधिकार प्रदान कर सके। 1668 ई. के चार्टर ने कम्पनी को मात्र व्यापारिक निकाय से बदलकर एक क्षेत्रीय शक्ति बना दिया। जैसा कि हमने पहले बताया है, 1669 ई. में कम्पनी ने बम्बई पर अपना क्षेत्रीय अधिकार प्राप्त कर लिया। यहां राज्य करने के लिए अब कम्पनी स्वतंत्र होकर कानून बना सकती थी और अध्यादेश जारी कर सकती थी। यहां तक कि 1676 ई. में कम्पनी को बम्बई में सिक्के ढालने का भी अधिकार मिल गया। 1683 ई. के चार्टर से कम्पनी को एक सीमा तक सेना रखने की भी अनुमति मिल गई और अमेरिका, अफ्रीका और एशिया में युद्ध करने या शांति स्थापित करने का भी अधिकार मिल गया। 1687 ई. में कम्पनी को मद्रास में एक नगर निगम और मेयर की अध्यक्षता में न्यायालय स्थापित करने का अधिकार मिला।

गौरवपूर्ण क्रांति (1688 ई.) से कम्पनी की बढ़ी ताकत को झटका पहुंचाया। 1693 ई. के चार्टर के अनुसार कोई भी कम्पनी में 10,000 पौंड तक हिस्से (शेयर्स) खरीद सकता था। इसी प्रकार मताधिकार की सीमा 500 पौड़ से बढ़ाकर 1,000 पौंड कर दी गई और अब एक सदस्य अधिकतम दस वोट तक दे सकता था। 1694 ई. में पदाधिकारियों के समयबद्ध सेवानिवृत्ति का सिद्धांत अनिवार्य बना दिया गया। 24 सदस्यों में से प्रतिवर्ष 8 सदस्यों को

सेवानिवृत्त होना था। मताधिकार की सीमा एक बार फिर 1000 पौंड से घटाकर 500 पौंड कर दी गई। अब पहले के दस मत के स्थान पर प्रत्येक सदस्य को पांच मत देने का अधिकार रह गया। कम्पनी ने राजा और संसद को काफी ऋण देकर कई चार्टरों द्वारा रियायतें प्राप्त की। इन चार्टरों के जरिए (1709, 1711, 1726, 1734, 1744, 1754, 1757 ई.) में कम्पनी ने अधिक से अधिक सैन्य और प्रशासनिक अधिकार प्राप्त किए।

25.4.3 फ्रांसीसी

फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनी एक राज्य नियंत्रित संगठन था और इस प्रकार इंग्लैंड और हॉलैंड की चार्टर्ड कम्पनियों से भिन्न था। फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनी को अपने अनुदानों, रियायतों, ऋणों, आदि के लिए फ्रांसीसी सरकार पर काफी निर्भर रहना पड़ता था। 1723 ई. के बाद से इसके लगभग सभी निदेशक राज्य के प्रतिनिधि थे। इस प्रकार फ्रांसीसी सरकार का इस पर पूरा नियंत्रण स्थापित हो गया। इसके हिस्सेदारों में व्यापारियों की नहीं बल्कि कुलीनों और ठेकेदारों की संख्या अधिक थी। वे तुरंत लाभ अर्जित करने में रुचि लेते थे। फ्रांसीसी सरकार निरंकुश, भ्रष्ट और पतनोन्मुख थी और उनका इस स्तर का नियंत्रण फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनी के लिए स्वभावतः घातक सिद्ध हुआ।

व्यावहारिक तौर पर निदेशकों के पास कोई शक्ति नहीं थी। यहां तक कि हिस्सेदारों की बैठक भी कभी-कभी ही होती थी और इस बैठक में सरकारी या राजा के पदाधिकारी के आगे उनकी कुछ नहीं चलती थी। माननीय सदस्यों या निदेशकों द्वारा प्रस्तुत और मंत्री द्वारा अनुमोदित प्रस्ताव को नामंजूर करने के बारे में "एसेम्बली जनरल" भी नहीं सोच सकती थी।

आरंभ से ही फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनी दिवालिया थी। कम्पनी का पुनर्संगठन करने के लिए 1684 ई. में आम सभा (जनरल असैम्बली) बुलाई गई। राजा द्वारा मनोनीत निदेशक आजीवन पद पर बने रह सकते थे। एक निदेशक की मृत्यु के बाद उसके स्थान पर शेष निदेशक और हिस्सेदार (कम से कम 20,000 लिवर के हिस्सेदार) मतदान द्वारा निदेशक का चुनाव कर सकते थे। प्रशासन पूरी तरह निदेशकों, जिनकी संख्या 12 थी, की मुट्ठी में था जिन्हें प्रतिवर्ष 3000 लिवर प्राप्त होता था।

1688 ई. में आठ नये निदेशकों के पद कायम किए गए। इस निदेशकों को नियुक्ति के लिए 60,000 लिवर नियुक्ति शुल्क अदा करना था। 1697 ई. में साधारण हिस्सेदारों ने भी कम्पनी प्रशासन में अपने प्रतिनिधियों को शामिल करने की मांग की परंतु उन्हें सफलता नहीं मिली।

1721-23 में पुनः कम्पनी को संगठित करने के लिए प्रयास किए गए। 1730 ई. के बाद यह कम्पनी राष्ट्रीय ईस्ट इंडिया कम्पनी बन गई। ये बारहों निदेशक राज्य द्वारा नियुक्त "कार्उसिल डेस इंडीज" के क्लर्क बनकर रह गए। इस काउंसिल में राजकीय पार्षद, नौसेना अधिकारी और प्रतिष्ठित व्यापारी शामिल थे। हिस्सेदारों द्वारा 6 मान्य सदस्यों या निदेशकों को चुनने का अधिकार 1745 ई. तक स्थगित रहा। 1745 ई. में उन्हें बारह व्यक्तियों को मनोनीत करने का अधिकार प्राप्त हुआ जिनमें से छह को सम्राट चुनता था। 1730 ई. के बाद एक राजकीय कमिश्नर के द्वारा परिषद् ने अपने आदेश देने शुरू किए। वास्तव में महानिदेशक परिषद् (कन्ट्रोलुस जनरल) और नौसेना मंत्री के पास कम्पनी का वास्तविक नियंत्रण था। पूंजी का अधिकांश हिस्सा निदेशकों के हाथ में ही रहा।

कम्पनी का मुख्यालय पेरिस में था। परन्तु रेजिडेन्ट निदेशक के नेतृत्व में लोरिएण्ट में भी लगभग उतने ही कर्मचारी कार्यरत थे।

फ्रांसीसी कम्पनी के पास अपना जहाजी बेड़ा था। परन्तु अन्य दो बड़ी ईस्ट इंडिया कम्पनियों के मुकाबले फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनी में व्यर्थ खर्च अधिक होते थे।

1769-1785 ई. से और पुनः 1789 ई. की फ्रांसीसी क्रांति के बाद से भारत के साथ फ्रांसीसी व्यापार के द्वार सबके लिए खुल गये।

बोध प्रश्न 3

1) "इन्टरलोपर्स" कौन थे? इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के साथ उनके संघर्ष का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

2) फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनी अपने समकालीन इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी से किन मायनों में भिन्न थी?

....

....

....

....

....

25.5 भारतीय शासक और यूरोपीय कम्पनियां

मुगल और भारतीय शासक भारत के विदेशी व्यापार का विकास करना चाहते थे ताकि उनका राजस्व स्रोत बढ़ सके। अतः सभी प्रकार की दिक्कतों के बावजूद मुगल बादशाहों और स्थानीय भारतीय शासकों ने विदेशी व्यापारियों का स्वागत किया। परन्तु मुगल और अन्य भारतीय राजाओं की समुद्र पर पकड़ मजबूत नहीं थी। समुद्र में भारतीय जहाजों की सुरक्षा के लिए उन्हें किसी एक यूरोपीय ताकत से समझौता करना जरूरी था क्योंकि समुद्र पर उनकी शक्ति बहुत अधिक थी। आपने गौर किया होगा कि जब तक मुगल शासक मजबूत रहे तब तक यूरोपीय व्यापारियों ने याचिकाओं और पुरस्कारों का सहारा लिया। कम्पनियों ने व्यापार और कूटनीति के साथ-साथ युद्ध किया और अपने कारखाने वाले क्षेत्रों पर अधिकार की नीति अपनाई। मुगल सत्ता के कमजोर पड़ते ही ये यूरोपीय कम्पनियां एकाधिकार और रियायतें प्राप्त करने के लिए भारतीय राजाओं पर दबाव डालने लगे। उन्होंने यहां की आन्तरिक कलह का भी भरपूर लाभ उठाया। (विस्तार के लिए ऐच्छिक पाठ्यक्रम ई.एच.आई. 05 देखिए)।

25.5.1 डच

डचों के प्रति गोलकुंडा शासकों का रुख सकारात्मक रहा। उन्होंने आयात और निर्यात पर 4 प्रतिशत सीमा शुल्क लगाकर डचों को व्यापार करने की इजाजत दे दी। कम्पनी को कपड़े पर लगाए गए कर पर भी छूट मिली (यह लगभग 12 प्रतिशत थी)। 1612 ई. में 4 प्रतिशत शुल्क को प्रतिवर्ष 3000 पगोडा की एक मुश्त रकम में परिवर्तित कर दिया गया।

भारतीय राजाओं के साथ कम्पनियों के संबंध का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि भारतीय शासकों द्वारा रियायतें प्रदान किए जाने के बावजूद स्थानीय अधिकारी लगातार इन आदेशों का उल्लंघन करते थे। यह अधिकारी कम्पनी के व्यापार पर कर लगाने का प्रयत्न किया करते थे। इससे कम्पनी और स्थानीय अधिकारियों में अक्सर मुठभेड़ होती रहती थी। स्थानीय **हवलदार** की मनमानी मांगों से तंग आकर डचों ने 1616 ई. में पेटापूली स्थित अपना कारखाना बंद कर दिया। 1619 ई. में डच अपना मसूलीपट्टम स्थित कारखाना भी बंद करने वाले थे तभी गोलकुंडा के शासक ने हस्तक्षेप किया और स्थानीय **हवलदार** मीर

कासिम को हटा दिया। 1636 ई. में स्थानीय अधिकारियों द्वारा तंग किए जाने और स्थानीय व्यापारियों की दुश्मनी आदि के कारण डचों को हुगली स्थित कारखाना छोड़ देना पड़ा। (बाद में 1645-50 ई. में यह कारखाना फिर खोला गया)। 3000 **पगोड़ा** अदा करने पर उन्हें मसूलीपट्टम में सीमा शुल्क की छूट दे दी गई। 1657 ई. में उन्होंने गोलकुंडा के राजा से पूलिकट टकसाल में सिक्का ढलवाने का भी अधिकार प्राप्त कर लिया। उन्होंने 5.38 प्रतिशत टकसाल कर वसूल किया। 1676 के **फरमान** द्वारा गोलकुंडा शासक ने डचों को गोलकुडा में कर से पूरी तरह मुक्त कर दिया।

गोलकुंडा के मंत्री अकन्ना से अनबन होने के कारण 1680 के दशक में उन्होंने गोलकुंडा के विरुद्ध अस्त्र उठा लिए। 1686 ई. में उन्होंने मसूलीपट्टम बंदरगाह पर कब्जा कर लिया। यह कब्जा दो महीने तक कायम रहा। अन्ततः गोलकुंडा की संधि करनी पड़ी और गोलकुंडा शासक ने डचों को उनके सभी विशेषाधिकार लौटाने का वादा किया।

1690 ई. में तंजौर के **नायक** ने अपने राज्य में डचों को आधा कर भुगतान करने की छूट दे दी। उन्होंने तंजौर से अन्य यूरीपीयों को बाहर रखने का भी अधिकार प्राप्त कर लिया। उन्हें नागापट्टम में सिक्का ढालने का भी अधिकार मिल गया। बीजापुर के शासक ने भी 1651 ई. में जिंजी के **नायक** द्वारा प्रदान विशेषाधिकारों को अपनी स्वीकृति दे दी।

पश्चिमी तट पर व्यापार करने के लिए डच मुगल सम्राट जहांगीर से **फरमान** प्राप्त करने में सफल रहे। उन्हें बुरहानपुर से खम्भात और अहमदाबाद तक कर देने से मुक्ति मिल गई। शाहजहां ने भी उन्हें दो **फरमान** प्रदान किए जिनके अनुसार उन्हें बंगाल (1635 ई.) और सूरत में व्यापार करने की अनुमति मिल गई। 1638 ई. में कम्पनी को शोरा का व्यापार करने के लिए शाहजहां द्वारा अनुमति प्रदान कर दी गई। 1642 ई. में शाहजहां ने डचों को पीपली-आगरा मार्ग पर पारगमन शुल्क से मुक्त कर दिया। 1662 ई. में औरंगजेब ने शाहजहां द्वारा बंगाल में डचों को दिए गए सभी विशेषाधिकारों को स्वीकृति दे दी। मुगलों ने कुछ समय के लिए गोलकुंडा पर कब्जा कर लिया था, इसी दौरान 1689 ई. में औरंगजेब ने एक **फरमान** जारी कर गोलकुंडा में डचों के विशेषाधिकारों को स्वीकृति दे दी। शाह आलम (1709 ई.) ने सूरत और हुगली में सीमा शुल्क को साढ़े तीन प्रतिशत से घटाकर ढाई प्रतिशत कर दिया। उसने कम्पनी को पूरे मुगल साम्राज्य में पारगमन शुल्क से पूरी तरह मुक्त कर दिया। परन्तु स्थानीय अधिकारियों की रुकावटों के कारण कभी-कभी डच कारखानेदार राहदारी कर से मुक्ती नहीं पाते थे। इसी प्रकार स्थानीय अधिकारियों को खुश करने के लिए उन्हें काफी राशि भी खर्च करनी पड़ती थी। परन्तु कम्पनी अक्सर कर मुक्त वस्तुओं को ढोने के अपने विशेषाधिकार का उल्लघंन करती थी। वे हुगली में अपना माल ढोने के बदले भारतीय व्यापारियों का माल अपने नाम पर बिना कर के निकाल देते थे। 1712 ई. में जहांदार शाह ने औरंगजेब द्वारा कोरोमण्डल तट पर दिए गए सभी विशेषाधिकारों को मंजूरी दे दी। इसके बावजूद स्थानीय अधिकारी जहांदार शाह द्वारा दिए विशेषाधिकार को समर्पित करने के लिए तैयार नहीं थे। 1725-30 ई. पालकोट्टू और द्रकश्वरम् में स्थानीय अधिकारियों और डचों के मध्य जमकर लड़ाई हुई, और 1728 ई. में डच कारखाने पर आक्रमण कर उसे लूट लिया गया।

25.5.2 इंग्लिश

जहांगीर के शासनकाल में पहली बार मुगल दरबार में अंग्रेजी दूत आया था और उसे 1607 ई. में राजकीय **फरमान** प्रदान किया गया। 1608 ई. में अंग्रेजों ने सूरत में कारखाना लगाया और उसी वर्ष कैप्टन हॉकिन्स को मुगल दरबार में व्यापारिक रियायतें प्राप्त करने के लिए भेजा गया। आरंभ में जहांगीर ने अंग्रेजी दूत का स्वागत किया और सम्राट ने उसे 400 **जात** का **मनसब** प्रदान किया। 1611 ई. में हॉकिन्स को हालांकि सूरत में व्यापार करने की अनुमति मिल गई परन्तु बाद में पुर्तगालियों के प्रभाव के कारण उसे आगरा से बाहर निकाल दिया गया। अंग्रेजों ने यह महसूस किया कि अगर वे मुगल शासकों से रियायतें प्राप्त करना चाहते हैं तो सर्वप्रथम उन्हें पुर्तगालियों के प्रभाव को कम करना पड़ेगा। इसके कारण सूरत के निकट स्वैली में दोनों के बीच सशस्त्र संघर्ष हुआ। (1612, 1614 ई.)। इसका आशाजनक परिणाम निकला। मुगल शासक पुर्तगालियों की नौ सेना

शक्ति का मुकाबला करने के लिए अंग्रेजों की सहायता चाहते थे। इसके अतिरिक्त वे यह भी चाहते थे कि विदेशी व्यापारियों की प्रतिद्वंद्विता से भारतीय व्यापारियों को अधिक से अधिक मुनाफा हो। शीघ्र ही पश्चिमी तट पर सूरत के खंभात, अहमदाबाद और गोआ में कारखाने खोलने के लिए कैप्टन बेस्ट मुगलों से एक राजकीय **फरमान** प्राप्त करने में सफल रहा।

1615 ई. में सर टामस रो को जहांगीर के दरबार में भेजा गया। अंग्रेजों ने भारतीय शासकों की नौ सेना संबंधी कमजोरियों का लाभ उठाने की कोशिश की। उन्होंने भारतीय व्यापारियों और उनके जहाजों को परेशान करना शुरू किया। इस दबाव के परिणामस्वरूप एक **फरमान** जारी कर अंग्रेजों को मुगल साम्राज्य के सभी भागों में कारखाने खोलने का अधिकार प्राप्त हो गया। अंग्रेजों की इस सफलता के बाद 1620 ई. से 1630 ई. के बीच अंग्रेजों और पुर्तगालियों के बीच कई संघर्ष हुए जिसमें अंग्रेजों की जीत हुई। इसके बाद गोआ, दमन और दीव को छोड़कर धीरे-धीरे पुर्तगालियों का अन्य भारतीय क्षेत्रों पर प्रभुत्व समाप्त हो गया। 1662 ई. में उन्होंने बम्बई का द्वीप इंगलैंड के चार्ल्स द्वितीय को दहेजस्वरूप दे दिया।

जहांगीर के शासनकाल के अंतिम दिनों में इंग्लिश कम्पनी ने सूरत स्थित अपने कारखाने की किलाबंदी करने का प्रयत्न किया, परन्तु मुगल अधिकारियों ने उन्हें बंदी बना लिया। जब कम्पनी के प्रतिद्वंद्वी अंग्रेज व्यापारियों ने मुगल जहाजों पर आक्रमण किया तब मुगलों ने सूरत स्थित कम्पनी के अध्यक्ष को गिरफ्तार कर लिया और उन्हें 1,80,000 रुपयों का भुगतान करने पर ही मुक्त किया गया।

1651 ई. में इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी को शाहजहां के पुत्र और उस समय बंगाल के गवर्नर सुल्तान शुजा ने **निशान प्रदान** किया। इसके द्वारा उन्हें 3000 रुपये प्रतिवर्ष का निश्चित भुगतान करने की शर्त पर व्यापारिक विशेषाधिकार प्रदान किए गए। 1656 ई. में प्राप्त एक अन्य निशान द्वारा इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी को सीमा शुल्क से छूट मिल गई परन्तु बंगाल से शुजा की वापसी के बाद उसके उत्तराधिकारी ने शुजा के आदेश को नजरअंदाज कर दिया क्योंकि इससे राजकीय कोष पर असर पड़ रहा था और बाद में शाइस्ता खां (1672 ई.) और सम्राट औरंगजेब के **फरमान** ने अंततः अंग्रेजों को सीमा शुल्क से मुक्त कर दिया।

औरंगजेब के शासनकाल में मुगल-अंग्रेज संबंधों में कुछ परिवर्तन नजर आता है। इस समय तक इंग्लिश कम्पनी ने मद्रास और बम्बई स्थित अपने क्षेत्रों की किलाबंदी कर ली थी और अपनी स्थिति मजबूत समझने लगे थे। औरंगजेब खुद भी दक्खनी अभियानों में व्यस्त था। ऐसी स्थिति में अंग्रेज विनयपूर्वक याचिका देने की नीति को छोड़ने की बात सोच सकते थे। शक्ति का इस्तेमाल करके मूल्य निर्धारित कर सकते थे और व्यापार पर एकाधिकार हासिल कर सकते थे। वे धीरे-धीरे सभी यूरोपीय शक्तियों को प्रतिद्वंद्विता से हटाकर व्यापार पर अपना एकाधिकार स्थापित करना चाहते थे।

1686 ई. में अंग्रेजों ने मुगल सम्राट के खिलाफ युद्ध छेड़ दिया और हुगली को रौंद दिया। परन्तु यहां मुगल शक्ति को आंकने में उनसे भारी भूल हो गई। दक्षिण भारत के शासकों की तुलना में मुगल सम्राट की शक्ति काफी मजबूत थी और एक छोटी व्यापारिक कम्पनी की मुगलों के सामने कोई बिसात नहीं थी। अतः कम्पनी को बुरी तरह अपमानित होना पड़ा। उन्हें बंगाल स्थित सभी कारखानों को छोड़ना पड़ा। सूरत, मसूलीपट्टम और विशाखापट्टम स्थित उनके कारखानों पर तथा बंबई स्थित उनके किले पर मुगलों ने कब्जा कर लिया गया।

मुगलों की शक्ति का अंदाज लगते ही वे पुनः **याचिका** और **कूटनीति** की अपनी पुरानी नीति पर लौट गए। वे पुनः 'विनयपूर्वक याचिका' के लिए अनुरोध करने लगे और भारतीय शासकों के संरक्षण में व्यापार करने को सहमत हुए।

विदेशी व्यापार के बढ़ते लाभ को देखते हुए मुगलों ने उन्हें माफ कर दिया। 1,50,000 रुपयों का मुआवजा लेकर औरंगजेब ने उन्हें व्यापार करने की अनुमति दे दी। 1619 ई. में 3000 रुपये वार्षिक शुल्क देकर इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी ने बंगाल में सीमा शुल्क से मुक्ति पा ली। व्यापारिक रियायत की वैध अनुमति लेने और अंग्रेजी बस्तियों में अंग्रेजी शासन का अधिकार प्राप्त करने के लिए 1698 ई. में इंग्लैंड के राजा ने सर विलियम नोरिस को औरंगजेब के दरबार में भेजा। 1714-17 ई. में सरमन के नेतृत्व में दूसरा प्रतिनिधि मंडल भेजा गया जो फरूखसियर से तीन **फरमान** प्राप्त करने में सफल रहा। इसके द्वारा उन्हें गुजरात के साथ-साथ दक्खन में भी सीमा शुल्क देने से मुक्ति मिल गई। जब तक मुर्शिद कुली खां और अली वर्दी खां का बंगाल पर शासन रहा तब तक वे कम्पनी द्वारा विशेषाधिकारों के दुरुपयोग पर कड़ाई से नियंत्रण लगाते रहे। परन्तु उनके हटने (1750 का दशक) के बाद अंग्रेजों को हस्तक्षेप करने का मौका मिल गया और जल्द ही 1757 ई. में प्लासी के युद्ध में उन्हें बंगाल के नवाब को परास्त करने में सफलता प्राप्त हुई। (विस्तार के लिए ऐच्छिक पाठ्यक्रम ई.एच.आई.-05 देखिए)।

गोलकुंडा के शासकों का भी इंग्लिश कम्पनी के साथ मित्रतापूर्ण संबंध था। 1632 ई. में गोलकुंडा के शासक ने **फरमान** जारी कर गोलकुंडा के बन्दरगाहों पर अंग्रेजों को मुक्त रूप से व्यापार करने की छूट दे दी। इसके बदले में उन्हें 500 **पगोड़ा** देना था, इसके बाद वे निर्बाध रूप में वस्तुओं का व्यापार कर सकते थे। इससे निश्चित रूप से कोरोमण्डल क्षेत्र में अंग्रेजों के व्यापार में अभूतपूर्व प्रोत्साहन मिला।

25.5.3 फ्रांसीसी

फ्रांसीसियों को 1677 ई. में मराठों (शिवाजी) का प्रकोप झेलना पड़ा था। फ्रांसीसी कमांडर (बाद में भारत में फ्रांसीसी मामलों का महानिदेशक) मार्टिन ने शिवाजी की सत्ता स्वीकार कर ली और उनके क्षेत्र में व्यापार करने की छूट देने के बदले एक राशि अदा करने के लिए सहमत हुआ। शिवाजी ने फ्रांसीसिसी निवेदन इस शर्त पर स्वीकार किया कि वे उसके खिलाफ होने वाले सैनिक अभियानों में शामिल नहीं होंगे। 1689 ई. में शम्भाजी ने फ्रांसीसियों को पांडिचेरी की किलाबंदी करने की अनुमति दे दी। 1667 ई. में फ्रांसीसियों ने औरंगजेब से **फरमान** प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की और उन्होंने सूरत में अपना कारखाना लगाया। 1688 ई. में मुगल सम्राट औरंगजेब ने फ्रांसीसियों को चन्द्रनगर गांव दे दिया। कर्नाटक के नवाब दोस्त अली के साथ भी फ्रांसीसियों के अच्छे संबंध थे। उसकी जोरदार अनुशंसा के आधार पर ही मुगल सम्राट मौहम्मद शाह ने एक **फरमान** जारी कर फ्रांसीसियों को सिक्का गढ़ने और सोने और चांदी की मुद्रा जारी करने का अधिकार दे दिया। यह अधिकार इस शर्त पर दिया गया कि इन मुद्राओं पर एक तरफ मुगल बादशाह तथा दूसरी तरफ टकसाल के स्थान का नाम अंकित होना चाहिए।

दक्षिण की राजनैतिक स्थिति में हुए परिवर्तन के कारण फ्रांसीसियों को भारतीय शासकों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का मौका मिल गया। 1738 ई. में वेन्कोजी के पोते बाबा साहब की मृत्यु के बाद तंजोर में गृह युद्ध छिड़ गया। गद्दी के एक दावेदार साहूजी ने फ्रांसीसी गवर्नर एम. ड्यूमा से सहायता मांगी। इसके बदले उसने फ्रांसीसियों को करिकल और किरकनगढ़ी देने का वादा किया। परन्तु उसने अपने वादे पर अमल नहीं किया और इससे चान्दा साहब (कर्नाटक के नवाब दोस्त अली का दामाद) को मौका मिला और उसने शीघ्र फ्रांसीसी गवर्नर के पास जाकर करिकल और किरकनगढ़ी देने का वादा किया बशर्ते वे उसे तंजोर के इलाकों पर अधिकार करने में उसकी मदद करें। परन्तु जल्दी ही चांदा साहब को मराठों के प्रकोप का सामना करना पड़ा और वह फ्रांसीसी सहायता प्राप्त करने के लिए मजबूर हुआ। मराठों से सफलतापूर्वक टक्कर लेने की बात सुनते ही मौहम्मद शाह ने फ्रांसीसी गवर्नर एम. ड्यूमा को नबाव की पदवी प्रदान की और 4500 **जात** और 2000 **सवार** का **मनसब** प्रदान किया। दक्षिण भारत में फ्रांसीसियों के हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप कर्नाटक के युद्ध हुये जिसमें फ्रांसीसियों की हार हुई (कर्नाटक-युद्धों और आंग्ल-फ्रांसीसी मुठभेड़ों, आदि पर ऐच्छिक पाठ्यक्रम ई.एच.आई.-05 में विस्तार से विचार किया गया है)।

बोध प्रश्न 4

1) मुगल शासकों और भारतीय राजाओं ने यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों को क्यों प्रोत्साहित किया।

....

....

....

....

....

2) स्थानीय अधिकारी भारतीय शासकों द्वारा यूरोपीय व्यापारियों को दिए गए विशेषाधिकारों का पालन करने में क्यों रुकावट डालते थे? इसका क्या परिणाम हुआ?

....

....

....

....

....

25.6 सारांश

आशा अन्तरीप मार्ग के जरिये नये समुद्री मार्ग का पता लगाते ही पूर्वी व्यापार का द्वार सभी यूरोपीय राष्ट्रों के लिए खुल गया। इस दौरान अफ्रीका और एशिया में पुर्तगालियों, डच, इंग्लिश और फ्रांसीसी व्यापारिक कम्पनियों ने अपने कारखाने लगाए। यूरोपीय कम्पनियां भारतीय शासकों से ज्यादा से ज्यादा रियायत प्राप्त करना चाहती थीं। वे पूर्वी व्यापार पर एकाधिकार प्राप्त करना चाहते थे, परिणामस्वरूप समुद्र में और जमीन पर दोनों जगह इनमें मुठभेड़ें हुई। 1750 के दशक तक अंग्रेजों ने सबको पीछे छोड़ दिया और भारत में साम्राज्य स्थापित करने की दिशा में अग्रसर हुए।

पुर्तगाली, डच और इंग्लिश कम्पनियां मूलतः व्यापारिक कम्पनियां थीं। परन्तु फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनी फ्रांसीसी सरकार पर बहुत निर्भर थी। भारत में सभी यूरोपीय कम्पनियों के पास किलाबंद कारखाने थे। वे कारखाने केवल भंडारगृह ही नहीं थे लेकिन अस्त्र-शस्त्र के अड्डे भी थे। भारत में उनका प्रधान प्रेसिडेंट/गवर्नर होता था। परन्तु उन्हें सारी शक्ति अपने देश से प्राप्त होती थी। भारत स्थित डच ईस्ट इंडिया कम्पनी सीधे बटाविया के प्रति जिम्मेदार थी जो हेग स्थित मुख्यालय से जुड़ा हुआ था।

इन कम्पनियों ने मुगलों और अन्य भारतीय राजाओं से अच्छा संबंध बनाए रखने की कोशिश की। परन्तु वे खुशामद, याचिका, पुरस्कार, धमकी और सैन्य शक्ति प्रदर्शन की मिली-जुली नीति का प्रयोग करते थे। भारतीय शासकों ने भी सीमा शुल्क में बढ़ोत्तरी की आशा से यूरोपीय कम्पनियों को बढ़ावा दिया। शक्तिशाली राज्य के अभाव में यूरोपीय कम्पनियो का दक्षिण में प्रवेश आसान था। शीघ्र ही वे कमजोर नायकों और दक्खनी शासकों ार अपनी शर्तें लादने लगे। परन्तु सत्रहवीं शताब्दी में वे शक्तिशाली मुगलों का सामना नहीं कर सके। उन्होंने जब भी मुगलों से टक्कर लेने की कोशिश की उन्हें मुंह की खानी पड़ी। परन्तु जैसे ही केंद्रीय मुगल सत्ता में कमजोरी के लक्षण नजर आने लगे वैसे ही यूरोपीय कम्पनियां और खासकर अंग्रेज अपनी मर्जी के अनुसार उनसे भी रियायतें प्राप्त करने में सफल हुए।

25.7 शब्दावली

देशी व्यापार : भारत के अंतर्देशीय व्यापार में भाग लेने वाले विदेशी कम्पनियां

25.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए उपभाग 25.2.1 भारत में इन दो कम्पनियों के हितों का विश्लेषण कीजिए और डचों के समर्पण का कारण बताइए। यह भी बताइए कि वे देशी व्यापार से ही अंततः कैसे संतुष्ट हुए।

2) i) 1602 ई. ii) 1599 ई. iii) 1608, ई. सूरत iv) 1668 ई. v) 1690-92 ई. vi) 1760, इंग्लैंड, फ्रांस।

बोध प्रश्न 2

1) देखिए उपभाग 25.3.1

2) देखिए उपभाग 25.3.2 सबसे पहले इस समिति के संगठन के बारे में बताइए। इसके अधिकारों और पूर्वी क्षेत्रों में स्थित कारखानों के साथ संबंधों का उल्लेख कीजिए।

बोध प्रश्न 3

1) देखिए उपभाग 25.4.2 इन्हें परिभाषित करने के बाद इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी से उनके हितों का टकराव, उनके द्वारा इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के एकाधिकार का विरोध और इस संघर्ष का परिणाम, आदि मुद्दों पर विचार कीजिए।

2) उपभाग 25.4.2, 25.4.3 ध्यान से पढ़िए। इस तथ्य का उल्लेख कीजिए कि इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी एक व्यापारिक संगठन था जबकि फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनी काफी हद तक फ्रांसीसी सरकार पर निर्भर थी। यह भी बताइए कि कैसे इससे भारत में फ्रांसीसी ताकत कमजोर हुई।

बोध प्रश्न 4

1) देखिए भाग 25.5 आलोचनात्मक रूप से परीक्षण कीजिए कि वे अपने व्यापारियों और कारीगरों की भलाई के लिए भारतीय विदेशी व्यापार का विकास चाहते थे, यह भी बताइए कि इससे उनकी वित्तीय स्थिति कैसे मजबूत हुई?

2) भाग 25.5 और इसके उपभाग सावधानी से पढ़िए। इससे स्थानीय अधिकारियों द्वारा वसूल किए गए राजस्व स्रोत में कमी आई। बताइए कि इस वजह से इन दोनों में कैसे सशस्त्र संघर्ष हुआ।

इस खंड के लिये कुछ उपयोगी पुस्तकें

इरफान हबीब : **मुगल कालीन कृषि व्यवस्था**

डब्लू. एच. मोरलैंड : **मुस्लिम कालीन भारत की कृषि व्यवस्था**

डब्लू. एच. मोरलैंड : **अकबर की मृत्यु के समय का भारत**

डब्लू. एच. मोरलैंड : **अकबर से औरंगजेब तक**

तपन राय चौधरी एवं इरफान हबीब : **द कैम्ब्रिज इकॉनामिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया भाग-1**